

सांप्रदायिकता के संदर्भ में असगर वजाहत के कथा-साहित्य : एक अद्ययन

अन्सिफा नवास

शोधार्थी

ansifanavas@gmail.com

डॉ. अंजली एस.

सहायक आचार्या

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं शोध केंद्र

महाराजा कॉलेज, एर्णाकुलम - केरल

भारत अत्यंत जटिल सामाजिक संरचना से युक्त देश है। यहाँ सांप्रदायिकता से जुड़ी बातें नई नहीं हैं। अतीत से लेकर वर्तमान तक सांप्रदायिक मनोवृत्ति सामाजिक जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बनकर उभरा है। सांप्रदायिकता के अधिक भयंकर रूप आधुनिक भारत में, आजादी के पहले और बाद में मिलता है, इसको लेकर कोई तर्क ही नहीं है। सांप्रदायिकता वह मानसिकता है, जिसमें व्यक्ति अपने धर्म को सर्वोपरि मानता है और मात्र उसी को सही मानता है। यह तभी खतरनाक बनता है जब वह अन्य धर्मों के प्रति घृणा या द्वेष रखते हुए उनकी धार्मिक आस्थाओं को दबाने की कोशिश करता है। धार्मिक आस्था एवं सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता सांप्रदायिक भेदभाव को पलने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। राजनीति इस आग को भभकाने का काम करता है। हमें पहले ये समझना चाहिए कि, धार्मिक होना एक बात है और सांप्रदायिक होना बिल्कुल दूसरी बात। कट्टर धार्मिक व्यक्ति धर्म-निरपेक्ष हो सकता है और धार्मिक चेतना में कोई विशेष रुचि न रखनेवाला व्यक्ति घोर सांप्रदायिक मनोवृत्ति का भी हो सकता है। इतिहास इसका गवाह है। पाकिस्तान के राष्ट्र पिता मुहम्मद अली जिन्ना का उदहारण ले सकते हैं। वे कट्टर मुसलमान नहीं थे लेकिन उन्होंने मुसलमानों के नाम पर विभाजन की मांग की; राजनीतिक सत्ता हासिल करने के लिए धर्म को हथियार बनाया। भारत-पाकिस्तान विभाजन इसी का ही परिणाम था। ठीक वही बात आज भारत में हो रहा है। वर्तमान समाज में राजनीतिक प्रयोजनों के लिए, सत्ता हासिल करने के लिए जनता की धार्मिक भावनाओं को भड़का रहे हैं। घोर सांप्रदायिक मानसिकतावाले लोग जहां तक आस्थावान हैं, यह परखना मुश्किल हो जाता है। धर्म, संप्रदाय, परंपरा, संस्कृति आदि आज राजनीतिक अधिकार पाने का साधन सिद्ध हो जाता है। सम्पूर्ण देश को ग्रस लेनेवाली इस समस्या को लेकर आज देश चिंतित है। इसलिए ही सांप्रदायिकता पर चिंतन करना वर्तमान समय की आवश्यकता है।

डॉ. असगर वजाहत बहुमुखी प्रतिभा से युक्त रचनाकार हैं। उनका साहित्य समकालीन भारतीय समाज की वास्तविकताओं का लेखा-जोखा है। विषय की दृष्टि से सांप्रदायिकता उनकी रचनाओं के केंद्र में है। उनका मानना है कि धर्म एक आध्यात्मिक सत्य है; उसे राष्ट्रीयता का आधार मानना गलत है। उनके अनुसार राजनीति से जुड़ने पर धर्म, धर्म नहीं रह जाता, वह विकृत हो जाता है। इसलिए उनको हम हमेशा धर्मतर राजनीति के पक्ष में खड़े होते हुए पाते हैं। समकालीन भारतीय राजनीति धर्म से जुड़ी हुई है। राजनीतिज्ञ जनता के मन में जड़ें जमाई हुई धार्मिक चेतना का उपयोग सत्ता हासिल करने के उपकरण के रूप में करते हैं। धार्मिक मान्यताओं का प्रचार करते हुए जनसमर्थन प्राप्त करना आज एक सामान्य रणनीति बन चुकी है। असगर वजाहत अपनी रचनाओं के माध्यम से इस स्थिति की सख्त आलोचना करते हैं। उनके अनुसार जब धर्म को सत्ता की सीढ़ि बना दिया जाता है, समाज में विभाजन, असहिष्णुता और घृणा की भावना बढ़ जाती है। सांप्रदायिक तनाव मानवीय संवेदनाओं को क्षति पहुंचाती है।

‘गुरु-चेला संवाद’, ‘मुख्यमंत्री’, ‘डेमोक्रेसिया’, जैसी उनकी कहानियों में आतंक, भ्रष्टाचार, पाखंड आदि सामाजिक विद्रूपताओं के साथ उलझी हुई धर्म के स्वरूप को हम देख सकते हैं। ‘सारी तालीमात’ पूंजी और धर्म के सांप्रदायिक गठजोड़ को दर्शाता है तो ‘मैं हिंदू हूँ’ सांप्रदायिकता के बदलते स्वरूप पर प्रकाश डालनेवाली कहानी है। ‘जख्म’ कहानी का नायक मुख्तार दंगे-फसाद का शिकार है। मुख्तार के माध्यम से सांप्रदायिक दंगे-फसाद भीषणता को सम्पूर्णता में वे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। ‘सात आसमान’, ‘कैसी आगी लगाई’, ‘बरखा रचाई’, ‘मनमाटी’, ‘चहारदार’-इन उपन्यासों में देश विभाजन से बनी मानसिकता, हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के बीच बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता की ज़हर, तज्जन्य तनाव आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार असगर वजाहत का कथा साहित्य धर्म और राजनीति के बीच के अनैतिक गढ़बंधनों एवं उससे उपजानेवाली सांप्रदायिकता के अनगिनत पहलुओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। समकालीन राजनीति पर टिपण्णी करते हुए वे कहते हैं - “हिन्दुत्व और सांप्रदायिकता के कारण ही वे आज सत्ता में बैठे हैं। सत्ता प्राप्त करने का इससे सरल नुस्खा क्या हो सकता है? यही तो मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना ने किया था।”¹

‘कैसी आगी लगाई’ उपन्यास का आरंभ अलीगढ़ के हिन्दू-मुस्लिम दंगों से होता है। शहर का वातावरण तनाव से भरा हुआ है। वहाँ फसाद का माहौल है और छोटी-छोटी घटनाएँ बड़े दंगों का रूप ले लेती दिखाई दे रहे हैं- “उन दिनों शहर में हिन्दू-मुस्लिम फसाद की फिजा बनी हुई थी। दो दिन पहले चाकू मारकर किसी हिन्दू की हत्या कर दी गई थी। उसके बाद मुसलमानों की कुछ दुकानें लुटी थीं। शहर के एक इलाके में कर्फ्यू लगा दिया गया था और शहर यूनिवर्सिटी के लड़कों के लिए ‘आउट ऑफ बाउन्ड’ हो गया था। प्राक्टर का ऐसा नोटिस मैंने देखा था।”² दंगों का प्रभाव विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों पर भी पड़ता है और उनके बीच इस विषय पर बहस होती है। कुछ धार्मिक विचारधारा से जुड़े छात्र इसे ईमान की कमजोरी का परिणाम मानते हैं, जबकि वामपंथी विचारधारा के छात्र इसे वर्ग संघर्ष और राजनीतिक स्वार्थ से जोड़कर देखते हैं- “तबलीगी जमात के लड़के कहते थे कि हमारा ईमान कमजोर हो गया है इसलिए हम पर इस तरह की मुसीबतें आती हैं।”³ “कॉम्युनिस्टों का कहना था कि सांप्रदायिक दंगों की राजनीति है उसे समझना चाहिए। और जब ‘क्लास स्ट्रगल’ तेज होगा तो दंगे अपने आप खत्म हो जाएंगे।”⁴ उपन्यास में लेखक ने सांप्रदायिक राजनीति की पोल खोलने का प्रयास करता है। उनका मानना है कि, कोई नहीं चाहता है कि दंगे रुके - “आम तौर पर सब लोग प्रशासन को दंगों का जिम्मेदार ठहराते थे और मानते थे कि कांग्रेस को भी इसमें कोई रुचि नहीं है कि दंगे रुकें। लेकिन कांग्रेस के अलावा और कोई पार्टी न दिखाई देती थी जिसे मुसलमान वोट दे सकें। क्योंकि पिछली साल हुए चीन के हमले की वजह से नेहरू ‘हिल’ गए हैं पर फिर भी गनीमत है।”⁵ दंगे- फसाद

का संबंध राजनीति से हैं और इसी कारण किसी प्रकार का समाधान खोजने की प्रक्रिया को गति नहीं दी जाती है। हिन्दू या मुसलमान लड़ना नहीं चाहते। भारत विभाजन आम लोगों के संघर्ष की वजह से नहीं हुआ था। हिन्दू-मुस्लिम तनाव हमेशा राजनीतिक होता है, किन्तु कुपरिणाम दोनों ही संप्रदायों को झेलना पड़ता है। असगर वजाहत ने पूरी साफगोई के साथ भारत में सांप्रदायिकता के कारणों को स्पष्ट किया है। 'जखम' कहानी में हिन्दू-मुसलमान के सांप्रदायिक दंगों में राजनेताओं तथा प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। नेता, अधिकारी तथा मीडिया सांप्रदायिक दंगों को नियंत्रित करने का प्रयास करते हुए दिखते जरूर हैं किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। वह अपनी नाकामियों को छुपाने के लिए ऐसी स्थिति का निर्माण करने से नहीं चकते। सांप्रदायिक दंगे आज एक सामान्य घटना बनकर उभरते हुए दिखाई देते हैं - "बदलते हुए मौसमों की तरह राजधानी में सांप्रदायिक दंगों का भी मौसम आता है। फर्क इतना है कि दूसरे मौसमों के आने-जाने के बारे में जैसे स्पष्ट अनुमान लगाए जा सकते हैं, वैसे अनुमान सांप्रदायिक दंगों के मामले में नहीं लगा सकते। फिर भी पूरा शहर यह मानने लगा है कि सांप्रदायिक दंगे भी मौसमों की तरह निश्चित रूप से आते हैं। बात इतनी सहज-साधारण बना दी गई है कि सांप्रदायिक दंगों की खबरें लोग इसी तरह सुनते हैं जैसे 'गर्मी बहुत बढ़ गई है' या 'अबकी पानी बहुत बरसा'! दंगों की खबर सुनकर बस इतना मान लेते हैं कि शहर का एक हिस्सा 'कर्फ्यूग्रस्त' हो गया है लोग रास्ते बदल लेते हैं।" कहानीकार असगर वजाहत ने भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन के अंग बन चुके सांप्रदायिक दंगों पर अपनी चिंता व्यक्त करते हैं। मौसम के बदलने की तरह सांप्रदायिक दंगों का आना चिंता का विषय है। इसके प्रभाव से सम्पूर्ण दंगों की खबर यदि सामान्य बन जाए तो देश की अस्मिता को ही खतरे में समझना चाहिए। यह सांप्रदायिक शक्तियों के हाथ में राजनीति के आने का परिणाम है।

आज से 40-50 वर्ष पहले सांप्रदायिक दंगों में इतनी बीभत्स हिंसा नहीं होती थी। दंगों को नियंत्रित करने के लिए नेता और दंगाई एक साथ काम नहीं करते थे। दंगों का कारण जमीन पर कब्जा या कुछ स्थानीय राजनीति हुआ करती थी। किन्तु अब सांप्रदायिक दंगों का लक्ष्य सत्ता पर कब्जा करना हो चुका है। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रिय मुद्दों पर भी हिंसा और घृणा का माहौल तैयार किया जाता हुआ दिखाई देता है। वर्तमान दौर के सांप्रदायिक दंगे धर्मांधता से चालित होते हैं। धर्म के नाम पर जब मानविकता नष्ट होती है, पाशविकता उस स्थान को ग्रहण करती हुई दिखाई देती है, नई पीढ़ी का मानवता पर विश्वास ही नष्ट हो जाता है। धार आतंक और अनिश्चितता में बीतनेवाला बचपन मानसिक विकास को अवरुद्ध कर देता है। 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी का 'सैफु' दंगों की भयावहता को देखते और भोगते हुए मानसिक संतुलन खो देता है। उसे लगता है कि यदि वह हिन्दू बन जाए तो उसकी जान बच सकती है। "बात कहां से कहां तक पहुंच चुकी है इसका अंदाजा मुझे उस वक्त तक न था जब तक एक दिन सैफु ने बड़ी गंभीरता से मुझसे पूछा- 'बड़े भाई, मैं हिन्दू हो जाऊँ?' सवाल सुनकर मैं सन्नाटे में आ गया। मैं ने कहा- 'क्यों, तुम हिन्दू क्यों होना चाहते हो?' "बच जाऊंगा!" "सांप्रदायिक कट्टरता के बीच अफवाहों की दुनिया में बीता बचपन सैफु में अरक्षितता पैदा करता है। सैफु यही सुनकर बड़ा हो रहा था कि हिन्दू देश में मुसलमानों के लिए बड़ा खतरा है। वह गैर-हिंदुओं को विनष्ट करने पर तुल्य हुए हैं। इसका प्रभाव बालमन पर पड़ना स्वाभाविक है। असगर वजाहत ने इस प्रवृत्ति को असहज माना है। फसादों को समाप्त कर बंधुत्व की स्थापना करने से ही स्वाभिमान एवं देश के प्रति दायित्व से युक्त एक पीढ़ी का निर्माण हो सकता है। 'गुरु-चेला संवाद' में लेखक ने समाज को विभाजित करने वाली शक्तियों पर व्यंग्य करते हैं। इस संवाद में गुरु चले को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि भारत में हिन्दू और मुसलमान एक साथ नहीं रह

सकते, क्योंकि उनकी धार्मिक विश्वास और परंपराएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। लेखक इस कथन के माध्यम से समाज में प्रचलित संकीर्ण मानसिकता और पूर्वाग्रहों को प्रकाश में लाने का प्रयास करते हैं। दंगों को रोकने के लिए समाज के विभिन्न वर्ग—पंडित-मौलवी, राजनीतिक नेता, सेठ-साहूकार तथा सरकारी अधिकारी—अपने-अपने स्तर पर प्रयास करने का दावा करते हैं, फिर भी दंगे समाप्त नहीं होते। दंगों के पीछे एक गहरी राजनीतिक विडम्बना छिपी हुई है। वास्तव में दंगों का बने रहना कुछ लोगों के स्वार्थ को पूरा करता है, इसलिए उनका स्थायी समाधान नहीं हो पाता। सांप्रदायिक दंगे केवल भावनात्मक उन्माद का परिणाम नहीं होते, बल्कि उनके पीछे सत्ता की इच्छा, स्वार्थ और अवसर का लाभ उठाने की प्रवृत्ति भी सक्रिय रहती है। संवाद की अंतिम पंक्ति— "इसे समझ जाओगे.. और किसी दंगे में मार दिए जाओगे।"— यह बताती है कि दंगों के वास्तविक कारणों को समझना ही व्यवस्था के लिए असहज है। इस प्रकार यह संवाद समाज में व्याप्त पाखंड, स्वार्थ और सांप्रदायिक मानसिकता पर गहरा प्रहार करता है तथा मानवता के पतन की ओर संकेत करता है। साथ ही, कहानीकार बहुत कम शब्दों में दंगों के दर्शन और समाजशास्त्र को पाठकों के सामने रख देता है। समाजशास्त्रियों के लिए दंगे एक सामाजिक समस्या हैं, कुछ लोग उन्हें केवल धार्मिक विवाद मानकर देखना चाहते हैं, जबकि कई बार राजनीतिज्ञों के लिए सांप्रदायिक दंगे केवल स्वार्थसिद्धि का साधन बन जाते हैं।

असगर वजाहत की कहानी 'शाह आलम कैम्प की रूहें' में नई सदी में घटित सांप्रदायिक दंगे-फसादों, हत्याकांडों तथा उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत किया गया है। इसमें दंगे में मारे गए, जिंदा जलाए गए लोगों की रूहों के सिवा गांधी और शैतान की रूहें भी कैम्प का दौरा करती हैं। दंगे से बचे हुए लोग शरणार्थी कैम्पों में नरकतुल्य जीवन बिताते हैं। वे किसी न किसी प्रकार उससे मुक्त होना चाहते हैं। इनकी समस्याओं को देखते हुए उन्हें सांत्वना देने और उन विस्थापितों को साधारण जीवन की ओर वापस लाने के लिए जिम्मेदार नेताओं के दंगे को भी इसमें दर्शाया है। 'मुश्किल काम' कहानी को हम असगर वजाहत की संवेदनक्षमता का सबसे बड़ा उदाहरण मान सकते हैं। इसमें हत्यारे का यह बयान मनुष्यता के पक्ष में सबसे बड़ी गवाही है - 'बच्चों को मारना बहुत मुश्किल है.. बच्चों को मारते समय.. अपने बच्चे याद आ जाते हैं।' यह मनुष्यता का संधान है और एक रचनाकार इसकी तलाश में हत्यारों की कुत्सित मंडली तक जाने में कोई संकोच नहीं करता। 'सारी तालीमात' ऐसी कहानी है जो पूंजी और धर्म के सांप्रदायिक गठजोड़ पर बात करती है। यह लेखक की शुरुआती कहानियों में से एक है। हाजी साहब का कारखाना और बस्ती के मजदूर मिलकर इसका परिवेश बनता है। हाजी साहब इतने भले हैं कि औरतों को सामान घर भेज देते हुए वहीं से काम करने की अनुमति देते हैं। गुजरात के गोधरा कांड और उसके बाद हुए व्यापक नरसंहार की विभीषिका को आज भी भुगतना पड़ रहा है। वे यादें त्रासद हैं तो क्या उन्हें भूल जाना चाहिए? तब तो हमें विश्व युद्धों और 1857 को भी भूलना पड़ेगा। उस विभीषिका पर लिखी कहानियों को बार-बार पढ़ना इसलिए जरूरी है कि ये रचनाएँ हमें मनुष्यता के करीब ले जाती हैं और हमारे भीतर बैठे हिंसक उन्मादी पशु को पहचानने में मदद करती हैं। **निष्कर्षतः** हम कह सकते हैं कि असगर वजाहत समय के नब्ज को पकड़कर चलनेवाले रचनाकार हैं। धर्म और राजनीति जब कुछ लोगों की स्वार्थ सिद्धि का उपकरण बन जाते हैं, वहाँ मनुष्यता अवरुद्ध हो जाती है। वे सांप्रदायिकता तथा उससे उपजी समस्याओं को राजनीतिज्ञों, पंडितों या मौलवियों के हवाले करने के पक्ष में नहीं हैं। ये सब सांप्रदायिकता की आड़ में देश एवं मनुष्यता को ध्वस्त करने पर उतारू हैं। उनके मन में मात्र सत्ता और उससे जुड़ी स्वार्थ चिंतन हैं।

इसीलिए ही इन वर्गों से मनुष्यता की आशा करना बेकार है। 'सांप्रदायिकता को खतम करने का जन सामान्य को अपने कंधों पर उठाना होगा। खासकर शिक्षित मध्य वर्ग की भूमिका इसमें अहम हो सकती है। यही वर्ग समाज में एकता और बंधुत्व को बनाए रखते हुए सांस्कृतिक सद्भाव की चेतना को जाग्रत कर सकता है। सांप्रदायिक कट्टरता को जैसे लोग समाप्त नहीं कर सकते, जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कोई-न-कोई हित सांप्रदायिक संघर्षों से जुड़ा हुआ होता है। संघर्ष को समाप्त करना तो एकता और सद्भाव से ही संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अस्मर वजाहत, सात आसमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ :154-155
2. अस्मर वजाहत, कैसी आगी लगाई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ : 13
3. वही, पृ :16
4. वही, पृ :17
5. वही, पृ :17
6. अस्मर वजाहत, पिचासी कहानियां, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, 2015, पृ:166
7. वही, पृ:279
8. अस्मर अली इंजीनियर, भारत में सांप्रदायिकता: इतिहास और अनुभव, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2003
9. डॉ. मनोज कुमार, सांप्रदायिकता और हिन्दी कथा साहित्य, हिन्दी साहित्य निकेतन, बीजनोर, प्रथम संस्करण-2003
10. सं. पल्लव, कथा शिखर अस्मर वजाहत, कौटिल्य बुक्स, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-2025

आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण

डॉ राकेश कुशवाहा

सहायक प्राध्यापक

कला एवं वाणिज्य विभाग

संत अलॉयसियस इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, गौर, जबलपुर (म.प्र.)

शोध सारांश- आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण आज के बदलते सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में अत्यंत प्रासंगिक विषय है। यह शोध सारांश इस बात पर केंद्रित है कि आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं में नैतिक मूल्यों, आत्म-अनुशासन, सहिष्णुता एवं आत्मबोध के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में भौतिकवाद और प्रतिस्पर्धा के बढ़ते प्रभाव के कारण युवाओं में तनाव, असंतुलन और मूल्यहीनता की प्रवृत्ति देखी जा रही है, जिसे आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से संतुलित किया जा सकता है। आध्यात्मिक शिक्षा व्यक्ति को केवल धार्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे जीवन के उद्देश्य, कर्तव्य और आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रेरित करती है। इसके माध्यम से युवाओं में सकारात्मक सोच, धैर्य, करुणा और नेतृत्व क्षमता का विकास होता है। योग, ध्यान एवं नैतिक शिक्षाओं के समावेश से युवा अपने भीतर की क्षमताओं को पहचान पाते हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को बेहतर ढंग से निभाते हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक शिक्षा युवा पीढ़ी के सर्वांगीण व्यक्तित्व निर्माण में एक सशक्त साधन है, जो उन्हें न केवल सफल बल्कि संवेदनशील और आदर्श नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती है।

कीवर्ड - आध्यात्मिक शिक्षा, युवा पीढ़ी, व्यक्तित्व निर्माण, नैतिक मूल्य, चरित्र विकास

प्रस्तावना- आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से युवा पीढ़ी का व्यक्तित्व निर्माण वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गया है। आज का समाज तीव्र परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा और भौतिकवादी प्रवृत्तियों से प्रभावित है, जिसके कारण युवाओं के जीवन में तनाव, अस्थिरता और नैतिक मूल्यों का हास देखने को मिलता है। ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक शिक्षा एक संतुलित और सकारात्मक दिशा प्रदान करती है, जो व्यक्ति के आंतरिक विकास पर बल देती है।

आध्यात्मिक शिक्षा केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह आत्मज्ञान, आत्मानुशासन, सहानुभूति, करुणा और नैतिकता जैसे गुणों का विकास करती है। यह युवाओं को अपने जीवन के उद्देश्य को समझने, सही-गलत का विवेक विकसित करने तथा समाज के प्रति उत्तरदायी बनने के लिए प्रेरित करती है। योग, ध्यान, प्रार्थना एवं नैतिक शिक्षाओं के माध्यम से युवा मानसिक शांति एवं आत्मबल प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार, आध्यात्मिक शिक्षा युवाओं के व्यक्तित्व को सुदृढ़, संतुलित और मूल्यपरक बनाती है। यह उन्हें केवल भौतिक सफलता तक सीमित नहीं रखती, बल्कि एक आदर्श, संवेदनशील और जागरूक नागरिक बनने की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती है।

वर्तमान समय में युवाओं की चुनौतियाँ - वर्तमान समय में युवाओं के सामने अनेक गंभीर चुनौतियाँ उपस्थित हैं, जैसे—तनाव, भटकाव, मूल्यहीनता, प्रतिस्पर्धा का दबाव और जीवन के उद्देश्य का अभाव। आधुनिक जीवनशैली, तकनीकी निर्भरता और सामाजिक अपेक्षाओं ने युवाओं के मन में अस्थिरता और असंतोष को बढ़ाया है। कैरियर की अनिश्चितता और सामाजिक तुलना के कारण वे मानसिक तनाव से